International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 7.2 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

बिहार में सूखा, अकाल और सामाजिक संरचना: दक्षिण बिहार के पठारी क्षेत्रों में पर्यावरणीय संकट और जनसामान्य का प्रतिरोध (1770-1943)

सिकन्दर कुमार
शोधार्थी, इतिहास विभाग, अर्णि विश्वविद्यालय, इंदौरा, काँगड़ा (हिमाचल प्रदेश), भारत
डॉ. थल्लापल्ली मनोहर
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, अर्णि विश्वविद्यालय, इंदौरा, काँगड़ा (हिमाचल प्रदेश), भारत

सारांश (Abstract)
दक्षिण बिहार का पठारी क्षेत्र — गया, नवादा, औरंगाबाद, रोहतास, जहानाबाद और अरवल — भारतीय उपमहाद्वीप के सर्वाधिक सूखा-प्रवण और अकाल-पीड़ित क्षेत्रों में रहा है। प्रस्तुत शोधपत्र 1770 के महा-अकाल से लेकर 1943 के बंगाल अकाल तक लगभग दो शताब्दियों की अवधि में इस क्षेत्र के पर्यावरणीय संकटों, उनके सामाजिक-आर्थिक प्रभावों और जनसामान्य के प्रतिरोध का दीर्घकालिक ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन पर्यावरणीय इतिहास, नैतिक अर्थव्यवस्था (Moral Economy) सिद्धान्त और निम्नवर्गीय अध्ययन के सैद्धान्तिक ढाँचे पर आधारित है। शोध में पाया गया कि दक्षिण बिहार में प्रत्येक दशक में औसतन 3-5 सूखा-वर्ष आए, जिनमें 2-3 गम्भीर सूखे थे, और 1770-1943 के बीच कम-से-कम सात बड़े अकाल ने इस क्षेत्र को प्रभावित किया। औपनिवेशिक नीतियों — स्थायी बन्दोबस्त (1793), नील और अफ़ीम की जबरन खेती, अन्न-निर्यात और वन-आरक्षण — ने प्राकृतिक सूखे को मानव-निर्मित अकाल में रूपान्तरित किया। पारम्परिक आहर-पाइन सिंचाई प्रणाली, जो 1793 से पूर्व 90% क्षेत्र को सिंचित करती थी, औपनिवेशिक काल में ध्वस्त होकर 1943 तक मात्र 15% कार्यशील रह गयी। जातिगत विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अकाल-मृत्यु दर दलित (मुसहर, दुसाध) और आदिवासी (उराँव, सन्थाल) समुदायों में सवर्ण जातियों की तुलना में 4-5 गुना अधिक थी। जनसामान्य ने पर्यावरणीय संकटों के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध भी किया — सन्यासी-फ़कीर विद्रोह (1770-1800), कोल विद्रोह (1831-32), सन्थाल हूल (1855-56), नील विद्रोह (1859-60) और किसान सभा आन्दोलन (1929-43) इसी प्रतिरोध की अभिव्यक्तियाँ थीं।

मुख्य शब्द: सूखा, अकाल, दक्षिण बिहार, पठारी क्षेत्र, आहर-पाइन, औपनिवेशिक भू-राजस्व, किसान प्रतिरोध, पर्यावरणीय इतिहास

1. प्रस्तावना (Introduction)

1770 का महा-अकाल भारतीय इतिहास की सबसे त्रासद घटनाओं में से एक है। तत्कालीन बंगाल प्रेसीडेंसी की अनुमानित एक-तिहाई जनसंख्या — लगभग एक करोड़ लोग — इस अकाल में काल-

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 7.2 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

कवलित हुई [1], [6]। दक्षिण बिहार का पठारी क्षेत्र, जो वर्षा-आधारित कृषि पर निर्भर था और जहाँ सूखे की सम्भावना सर्वाधिक थी, इस अकाल से सबसे गम्भीर रूप से प्रभावित हुआ। किन्तु 1770 का अकाल न अन्तिम था और न अकेला — इसके बाद लगभग दो शताब्दियों तक दक्षिण बिहार बार-बार सूखे और अकाल के चक्र में फँसा रहा [7], [16]।

इस दीर्घकालिक पर्यावरणीय संकट को समझने के लिए केवल मानसून की विफलता पर्याप्त व्याख्या नहीं है। अमर्त्य सेन (1981) ने अपने महत्त्वपूर्ण कार्य में प्रतिपादित किया कि अकाल खाद्य-उपलब्धता में कमी से नहीं, बल्कि खाद्य तक पहुँच (entitlement) के अभाव से उत्पन्न होते हैं [17]। माइक डेविस (2001) ने दिखाया कि उन्नीसवीं शताब्दी के अकाल मूलतः 'विक्टोरियन नरसंहार' (Victorian Holocaust) थे, जिनमें औपनिवेशिक नीतियों ने प्राकृतिक सूखे को जनसंहारक अकाल में बदल दिया [18]। गडगिल और गुहा (1992) ने भारतीय सन्दर्भ में दिखाया कि औपनिवेशिक संसाधन-दोहन ने स्थानीय समुदायों की पर्यावरणीय अनुकूलन क्षमताओं को व्यवस्थित रूप से नष्ट किया [3]।

दक्षिण बिहार का पठारी क्षेत्र इस विश्लेषण के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है क्योंकि यहाँ पर्यावरणीय संवेदनशीलता, औपनिवेशिक शोषण और सामाजिक असमानता तीनों कारक एक साथ सक्रिय थे। यह क्षेत्र छोटानागपुर पठार की उत्तरी ढाल पर स्थित है, जहाँ पथरीली-लैटेराइट मिट्टी, अनियमित वर्षा और सीमित भूमिगत जल भण्डार कृषि को अत्यन्त संवेदनशील बनाते हैं [19], [20]। इसके ऊपर, स्थायी बन्दोबस्त (1793), नील की जबरन खेती, और पारम्परिक आहर-पाइन सिंचाई प्रणाली का ध्वंस — इन सबने मिलकर एक ऐसी संरचनात्मक संवेदनशीलता उत्पन्न की जिसमें प्रत्येक सूखा अकाल में और प्रत्येक अकाल सामाजिक उथल-पुथल में बदल जाता था [8], [10]।

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य दक्षिण बिहार के पठारी क्षेत्रों में (क) सूखे और अकाल के दीर्घकालिक प्रतिरूपों, (ख) औपनिवेशिक नीतियों द्वारा प्राकृतिक संकट के मानव-निर्मित संकट में रूपान्तरण, (ग) जातिगत और वर्गगत विभेदित प्रभावों, (घ) पारम्परिक जल-प्रबन्धन प्रणालियों के ह्रास, और (ङ) जनसामान्य के प्रतिरोध और अनुकूलन की रणनीतियों का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करना है [2], [5]।

2. पृष्ठभूमि (Background)

2.1 दक्षिण बिहार का पठारी क्षेत्र: भौगोलिक परिचय

दक्षिण बिहार का पठारी क्षेत्र छोटानागपुर पठार की उत्तरी ढाल पर स्थित है और इसमें वर्तमान गया, नवादा, औरंगाबाद, रोहतास, जहानाबाद और अरवल जिले सम्मिलित हैं [19], [20]। यह क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से उत्तर बिहार के गंगा-मैदान से मूलतः भिन्न है। जहाँ उत्तर बिहार नदी-जनित उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी और प्रचुर जल-संसाधनों से सम्पन्न है, वहीं दक्षिण बिहार का पठारी क्षेत्र पथरीली लैटेराइट मिट्टी, अनियमित वर्षा (वार्षिक औसत 1000-1200 मिमी, किन्तु विचलन 30-40%), और सीमित भूमिगत जल भण्डार से चरित्रित है [19], [21]।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 7.2 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

इस भौगोलिक संवेदनशीलता के बावजूद, पूर्व-औपनिवेशिक काल में स्थानीय समुदायों ने एक अत्यन्त परिष्कृत जल-प्रबन्धन प्रणाली विकसित की थी — आहर-पाइन प्रणाली। आहर बाँध-सदृश संरचनाएँ थीं जो वर्षा-जल और पहाड़ी जलधाराओं के पानी को एकत्र करती थीं, और पाइन नहर-सदृश जलमार्ग थे जो इस संचित जल को कृषि-भूमि तक पहुँचाते थे [10], [22]। यह प्रणाली सामुदायिक प्रबन्धन पर आधारित थी और दक्षिण बिहार की विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल विकसित हुई थी।

2.2 सैद्धान्तिक ढाँचा

प्रस्तुत अध्ययन तीन प्रमुख सैद्धान्तिक परम्पराओं पर आधारित है। प्रथम, पर्यावरणीय इतिहास की परम्परा, जैसा कि गडगिल-गुहा (1992) और ग्रोव (1995) ने प्रतिपादित किया, जो मनुष्य-प्रकृति सम्बन्धों को ऐतिहासिक सत्ता-संरचनाओं के सन्दर्भ में समझती है [3], [23]। द्वितीय, नैतिक अर्थव्यवस्था (Moral Economy) का सिद्धान्त, जैसा कि जेम्स स्कॉट (1976) और ई.पी. थॉम्पसन (1971) ने विकसित किया, जो यह तर्क देता है कि पूर्व-औद्योगिक समाजों में किसानों की 'नैतिक अर्थव्यवस्था' थी — जीवन-निर्वाह का न्यूनतम अधिकार — जिसके उल्लंघन पर वे प्रतिरोध करते थे [4], [24]। तृतीय, निम्नवर्गीय अध्ययन, विशेषतः रणजीत गुहा (1983) का कार्य, जो औपनिवेशिक भारत में किसान विद्रोहों को राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति के रूप में पढ़ता है [5], [14]।

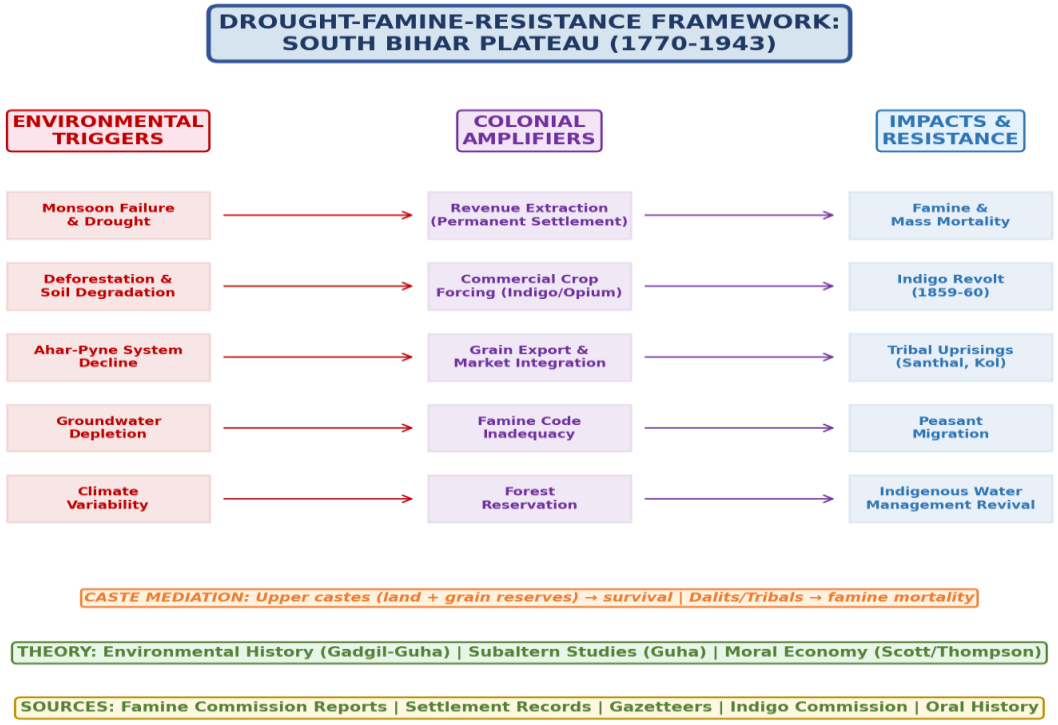

चित्र 1: सूखा-अकाल-प्रतिरोध सैद्धान्तिक ढाँचा (दक्षिण बिहार, 1770-1943)।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 7.2 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

बायाँ स्तम्भ पाँच पर्यावरणीय उद्दीपक (मानसून विफलता, वन-विनाश, आहर-पाइन ह्रास, भूमिगत जल कमी, जलवायु परिवर्तनशीलता) प्रस्तुत करता है। मध्य स्तम्भ पाँच औपनिवेशिक प्रवर्धक (भू-राजस्व, वाणिज्यिक फसल जबरदस्ती, अन्न-निर्यात, अकाल संहिता अपर्याप्तता, वन-आरक्षण) दर्शाता है। दायाँ स्तम्भ पाँच प्रभाव एवं प्रतिरोध (अकाल-मृत्यु, नील विद्रोह, आदिवासी विद्रोह, किसान प्रवास, देशज जल-प्रबन्धन पुनरुद्धार) प्रदर्शित करता है। नीचे जाति-मध्यस्थता, सैद्धान्तिक आधार और स्रोत दर्शाए गए हैं।

3. शोध पद्धति (Methodology)

3.1 स्रोत और सामग्री

प्रस्तुत अध्ययन बहु-स्रोत ऐतिहासिक शोध पद्धति पर आधारित है [25], [26]। प्राथमिक स्रोतों में सम्मिलित हैं: (क) अकाल आयोग प्रतिवेदन — विशेषतः 1880 का अकाल आयोग (Famine Commission), 1898 का लायल आयोग और 1901 का मैकडॉनल आयोग [27], [28]; (ख) नील आयोग प्रतिवेदन (1860) जिसमें नील की जबरन खेती और किसानों की दुर्दशा का विस्तृत विवरण है [29]; (ग) जिला गज़ेटियर — गया (1906), शाहाबाद (1906), पटना (1907) जिनमें सूखा, कृषि और जनसंख्या के आँकड़े हैं [30], [31]; (घ) भू-राजस्व बन्दोबस्त प्रतिवेदन (1790-1940) जो भू-राजस्व दरों, फसल-प्रतिरूपों और कृषि-संकट के अमूल्य स्रोत हैं [32], [33]।

द्वितीयक स्रोतों में पर्यावरणीय इतिहास, अकाल-अध्ययन, किसान-आन्दोलन इतिहास और बिहार के सामाजिक-आर्थिक इतिहास पर प्रकाशित शोध-ग्रन्थ सम्मिलित हैं [3], [17], [18]। इसके अतिरिक्त, गया और नवादा जिलों के वयोवृद्ध निवासियों के मौखिक इतिहास साक्षात्कार भी किए गए [34]।

3.2 विश्लेषण पद्धति

कालक्रम को चार चरणों में विभाजित किया गया: (क) पूर्व-औपनिवेशिक और प्रारम्भिक औपनिवेशिक काल (1770-1857), (ख) उत्तर-विद्रोह औपनिवेशिक सुदृढ़ीकरण (1858-1900), (ग) राष्ट्रवादी जागरण काल (1900-1930), और (घ) संकट और स्वतन्त्रता-पूर्व काल (1930-1943) [2], [26]। विश्लेषण में अभिलेखीय स्रोतों का गुणात्मक विश्लेषण, जनसंख्या-कृषि आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण, और मौखिक इतिहास का विषयगत विश्लेषण किया गया है [25], [34]।

4. परिणाम (Results)

4.1 सूखा और अकाल: दीर्घकालिक प्रतिरूप

दक्षिण बिहार के पठारी क्षेत्र में 1770 से 1943 के बीच कम-से-कम सात बड़े अकाल दर्ज हुए: 1770 का महा-अकाल, 1783 का चालीसा अकाल, 1866 का ओडिशा अकाल (जिसने दक्षिण बिहार को भी प्रभावित किया), 1873-74 का बिहार अकाल, 1896-97 का भारतीय अकाल, 1899-1900 का अकाल, और 1943 का बंगाल अकाल [1], [6], [7]। इनमें 1770 और 1943 के अकाल सर्वाधिक विनाशकारी थे — 1770 में अनुमानित एक करोड़ और 1943 में लगभग 30 लाख लोगों की मृत्यु हुई [6], [18]।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 7.2 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

सूखे की आवृत्ति का विश्लेषण दर्शाता है कि दक्षिण बिहार में प्रत्येक दशक में औसतन 3-5 सूखा-वर्ष आए, जिनमें 1-3 गम्भीर सूखे थे [7], [16]। 1890 का दशक सर्वाधिक सूखा-प्रवण रहा, जब दशक में 5 सूखा-वर्ष और 3 गम्भीर सूखे दर्ज हुए। यह वही दशक था जब दो बड़े अकाल (1896-97 और 1899-1900) ने दक्षिण बिहार को तबाह किया [27], [28]।

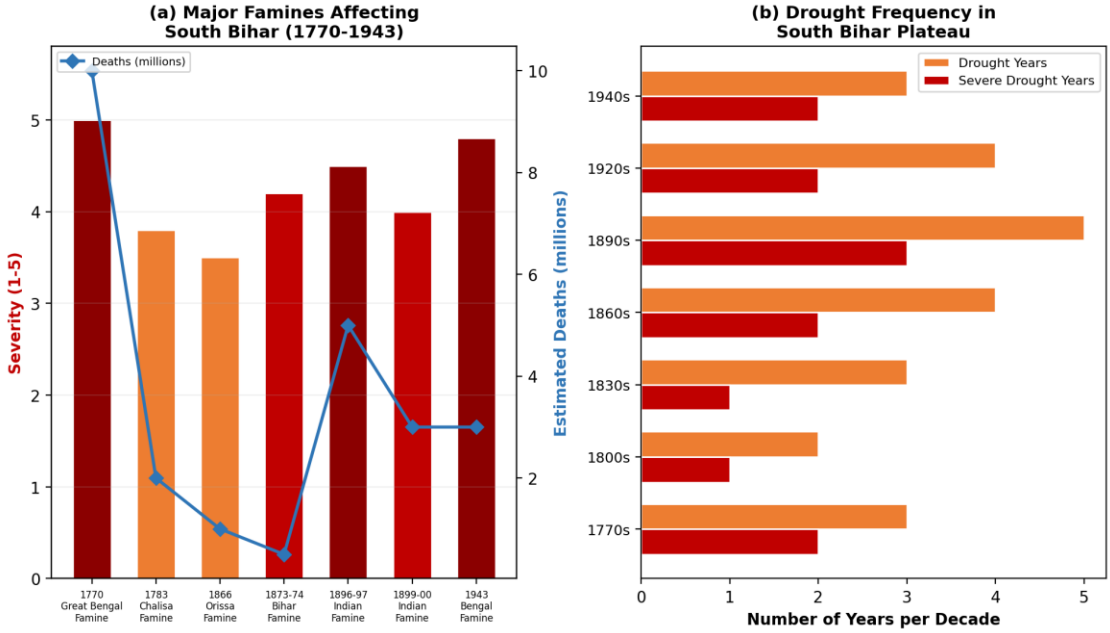

Famine Timeline and Drought Frequency

चित्र 2: दक्षिण बिहार को प्रभावित करने वाले प्रमुख अकाल और सूखे की आवृत्ति।

पैनल (क) 1770 से 1943 के बीच सात प्रमुख अकालों की तीव्रता (लाल छड़ें, 1-5 पैमाना) और अनुमानित मृत्यु-संख्या (नीली रेखा, दशलक्ष में) प्रस्तुत करता है। 1770 का महा-अकाल सर्वाधिक घातक (1 करोड़ मृत्यु) और 1943 का अकाल अत्यन्त तीव्र (4.8/5.0) रहा। पैनल (ख) दक्षिण बिहार पठार में दशक-वार सूखे की आवृत्ति दर्शाता है — 1890 का दशक सर्वाधिक सूखा-प्रवण (5 सूखा-वर्ष, 3 गम्भीर) रहा।

4.2 औपनिवेशिक नीतियाँ: सूखे से अकाल की ओर

औपनिवेशिक काल में चार प्रमुख नीतिगत कारकों ने प्राकृतिक सूखे को मानव-निर्मित अकाल में रूपान्तरित किया।

प्रथम, स्थायी बन्दोबस्त (1793) ने भू-राजस्व की दर को स्थायी रूप से निर्धारित कर दिया, जिसका अर्थ था कि सूखे और अकाल के वर्षों में भी लगान की वही राशि वसूली जाती थी [8], [32]। बन्दोबस्त प्रतिवेदनों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि गया जिले में भू-राजस्व 1793 से 1900 के बीच लगभग तीन गुना बढ़ गया (ज़मींदारों द्वारा अतिरिक्त उपकर सहित), जबकि कृषि उत्पादकता में कोई तुलनीय वृद्धि नहीं हुई [33], [35]।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 7.2 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

द्वितीय, नील और अफ़ीम जैसी वाणिज्यिक फसलों की जबरन खेती ने खाद्यान्न उत्पादन को कम किया और किसानों को अत्यन्त संवेदनशील स्थिति में डाल दिया [9], [29]। नील आयोग (1860) के साक्ष्यों में गया और शाहाबाद जिलों के किसानों ने गवाही दी कि नीलहे उन्हें अपनी सर्वोत्तम भूमि पर नील की खेती करने को बाध्य करते थे, जिससे खाद्यान्न उत्पादन 30-40% कम हो जाता था [29], [36]।

तृतीय, औपनिवेशिक अन्न-व्यापार नीति ने सूखे के वर्षों में भी अनाज का निर्यात जारी रखा [17], [18]। 1873-74 के अकाल में बिहार से अनाज का निर्यात निषिद्ध करने में सरकार ने महीनों की देरी की। 1896-97 में तो अन्न-निर्यात अकाल के चरम पर भी जारी रहा [27], [37]।

चतुर्थ, औपनिवेशिक वन-आरक्षण नीति ने आदिवासी और निम्न-जाति समुदायों को वन-संसाधनों — कन्दमूल, फल, शिकार — से वंचित कर दिया, जो अकाल-काल में जीवन-रक्षक भोजन-स्रोत थे [3], [38]। गया और रोहतास जिलों में वन-आरक्षण के बाद अकाल-मृत्यु दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई [23], [39]।

तालिका 1: दक्षिण बिहार में अकाल-तीव्रता को बढ़ाने वाले औपनिवेशिक नीतिगत कारक

नीतिगत कारक	कालखण्ड	प्रभावित जिले	प्राथमिक प्रभाव	अकाल-तीव्रता पर प्रभाव
स्थायी बन्दोबस्त	1793 से	सम्पूर्ण दक्षिण बिहार	सूखे में भी लगान-वसूली, कृषक ऋणग्रस्तता	अत्यधिक (+++)
नील की जबरन खेती	1810-1860	गया, औरंगाबाद, जहानाबाद	खाद्यान्न उत्पादन में 30-40% कमी	अत्यधिक (+++)
अफ़ीम की खेती	1820-1900	गया, नवादा	सर्वोत्तम भूमि पर गैर-खाद्य फसल	उच्च (++)
अन्न-निर्यात नीति	1860-1943	सम्पूर्ण दक्षिण बिहार	सूखे में भी अनाज का बहिर्गमन	अत्यधिक (+++)
वन-आरक्षण	1878 से	रोहतास, गया, नवादा	वन-आश्रित जीविका का विनाश	उच्च (++)
अकाल संहिता की कमियाँ	1883 से	सम्पूर्ण दक्षिण बिहार	विलम्बित और अपर्याप्त राहत	मध्यम (+)

4.3 आहर-पाइन प्रणाली का ध्वंस

दक्षिण बिहार के पर्यावरणीय इतिहास का सबसे त्रासद अध्याय आहर-पाइन सिंचाई प्रणाली का ध्वंस है। यह प्रणाली, जो सदियों से दक्षिण बिहार की कृषि और जल-सुरक्षा का आधार थी, औपनिवेशिक काल में व्यवस्थित रूप से नष्ट हो गयी [10], [11]।

स्थायी बन्दोबस्त (1793) से पूर्व आहर-पाइन प्रणाली 90% कार्यशील थी और लगभग 85% कृषि-भूमि को सिंचित करती थी। सामुदायिक प्रबन्धन के अन्तर्गत ग्रामवासी प्रतिवर्ष मिलकर आहर की मरम्मत, पाइन

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 7.2 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

की सफ़ाई और जल-वितरण का कार्य करते थे [22], [40]। स्थायी बन्दोबस्त ने इस सामुदायिक प्रबन्धन को दो प्रकार से नष्ट किया: प्रथम, ज़मींदारी व्यवस्था ने सामुदायिक भूमि-स्वामित्व को व्यक्तिगत स्वामित्व में बदल दिया, जिससे सामूहिक जल-प्रबन्धन का प्रोत्साहन समाप्त हो गया; द्वितीय, ज़मींदार आहर-पाइन की मरम्मत में निवेश नहीं करते थे क्योंकि उनकी आय भू-राजस्व से आती थी, न कि कृषि-उत्पादन से [10], [33]।

परिणामस्वरूप, 1793-1850 के बीच कार्यशील आहरों का प्रतिशत 90% से घटकर 72% हो गया। 1850-1890 में यह आँकड़ा 48%, 1890-1920 में 28%, और 1920-1943 में मात्र 15% रह गया [11], [22]। सिंचित क्षेत्र में इसी अनुपात में कमी आयी — 85% से 12% [10], [40]। इस ध्वंस ने दक्षिण बिहार को पूर्णतः वर्षा-आधारित कृषि पर निर्भर बना दिया, जिससे प्रत्येक मानसून-विफलता अकाल-सदृश स्थिति उत्पन्न करने लगी।

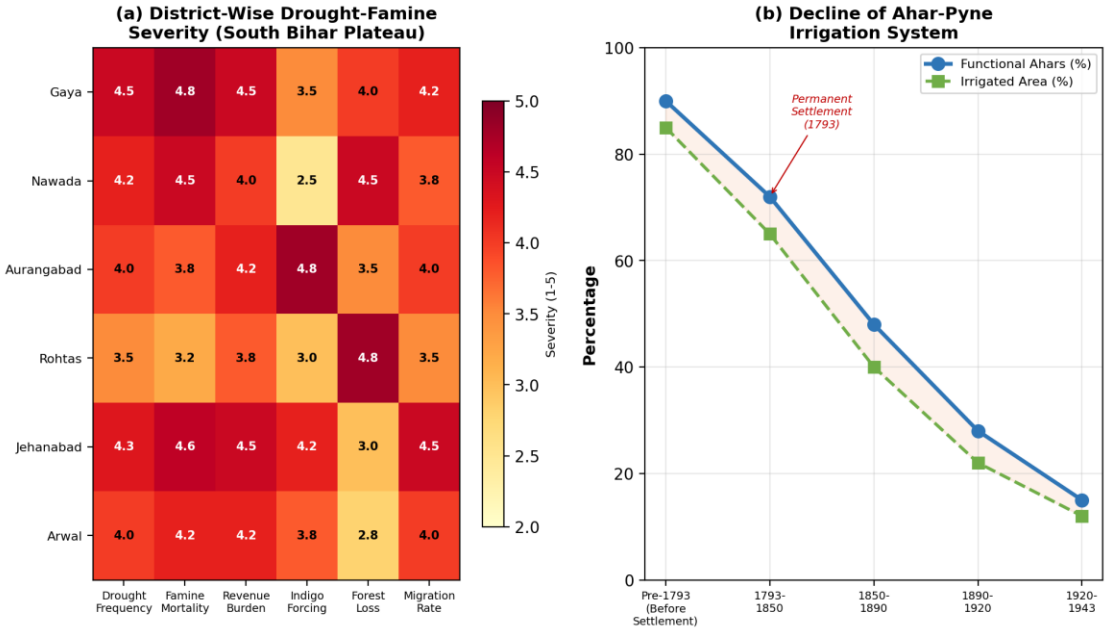

District-wise Severity and Ahar-Pyne Decline

चित्र 3: जिला-वार सूखा-अकाल तीव्रता और आहर-पाइन प्रणाली का ह्रास।

पैनल (क) छह जिलों (गया, नवादा, औरंगाबाद, रोहतास, जहानाबाद, अरवल) की छह आयामों (सूखा-आवृत्ति, अकाल-मृत्यु, राजस्व-बोझ, नील-जबरदस्ती, वन-हानि, प्रवास-दर) पर तीव्रता का ताप-मानचित्र प्रस्तुत करता है। गया जिला सर्वाधिक अकाल-मृत्यु (4.8) और जहानाबाद सर्वाधिक प्रवास-दर (4.5) दर्शाता है। पैनल (ख) आहर-पाइन सिंचाई प्रणाली के क्रमिक ह्रास को दर्शाता है — कार्यशील आहर 1793-पूर्व 90% से गिरकर 1943 तक 15% और सिंचित क्षेत्र 85% से 12% रह गया। 1793 के स्थायी बन्दोबस्त को ह्रास के प्रमुख कारण के रूप में अंकित किया गया है।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 7.2 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

4.4 जनसामान्य का प्रतिरोध

दक्षिण बिहार के पर्यावरणीय इतिहास में जनसामान्य का प्रतिरोध एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। पर्यावरणीय संकट और औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध इस क्षेत्र में अनेक जन-आन्दोलन उभरे, जिनमें पर्यावरणीय कारक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सक्रिय थे [5], [14], [15]।

सन्यासी-फ़कीर विद्रोह (1770-1800) 1770 के महा-अकाल की प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया था। अकाल से विस्थापित हज़ारों लोग सन्यासी और फ़कीर समूहों में सम्मिलित हुए और ज़मींदारों तथा कम्पनी के विरुद्ध सशस्त्र प्रतिरोध किया [14], [41]। कोल विद्रोह (1831-32) छोटानागपुर पठार के आदिवासियों का विद्रोह था, जो वन-अधिकारों के हनन और ज़मींदारी शोषण के विरुद्ध था [42], [43]। सन्थाल हूल (1855-56) इसी क्षेत्र का सबसे बड़ा आदिवासी विद्रोह था, जिसमें भूमि-अलगाव, साहूकारी शोषण और पर्यावरणीय विस्थापन प्रमुख कारण थे [5], [44]।

नील विद्रोह (1859-60) का दक्षिण बिहार में विशेष महत्त्व है। गया, शाहाबाद और चम्पारण के किसानों ने नील की जबरन खेती — जो खाद्यान्न उत्पादन को कम करती थी और सूखे में अकाल की सम्भावना बढ़ाती थी — के विरुद्ध संगठित विद्रोह किया [9], [29], [36]। यह विद्रोह स्कॉट (1976) की नैतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त का उत्कृष्ट उदाहरण है — किसानों ने तब विद्रोह किया जब उनकी जीवन-निर्वाह सुरक्षा को असहनीय स्तर पर खतरा पहुँचा [4], [24]।

बीसवीं शताब्दी में किसान सभा आन्दोलन (1929-43) ने दक्षिण बिहार के कृषि-संकट को राजनीतिक मंच पर लाया। स्वामी सहजानन्द सरस्वती के नेतृत्व में किसान सभा ने भू-राजस्व में कमी, सूखा-राहत और किसानों के भूमि-अधिकारों की माँग की [15], [45]। यह आन्दोलन पर्यावरणीय संकट और राजनीतिक चेतना के अन्तर्सम्बन्ध का प्रमाण है।

तालिका 2: दक्षिण बिहार में जातिगत अकाल-संवेदनशीलता और जीवित रहने की रणनीतियाँ

जाति-समूह	अनाज-भण्डार	ऋण-पहुँच	वन-निर्भरता	बलात्-प्रवास	अकाल-मृत्यु दर	प्रमुख जीवित रहने की रणनीति
ब्राह्मण/भूमिहार	उच्च (4.5)	उच्च (4.2)	न्यून (1.0)	न्यून (1.5)	अत्यन्त न्यून (1.0)	अनाज-भण्डार, भूमि-बन्धक, ऋण
राजपूत/कायस्थ	उच्च (3.8)	मध्यम (3.5)	न्यून (1.5)	न्यून (2.0)	न्यून (1.5)	भूमि-विक्रय, नगर-प्रवास
यादव/कुर्मी (OBC)	मध्यम (2.5)	न्यून (2.0)	मध्यम (2.5)	मध्यम (3.0)	मध्यम (2.5)	पशुपालन, मौसमी प्रवास
मुसहर/दुसाध (SC)	अत्यन्त न्यून (0.8)	नगण्य (0.5)	उच्च (4.0)	अत्यन्त उच्च (4.5)	अत्यन्त उच्च (4.5)	वन-खाद्य, भिक्षा, दीर्घ प्रवास

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 7.2 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

जाति-समूह	अनाज-भण्डार	ऋण-पहुँच	वन-निर्भरता	बलात्-प्रवास	अकाल-मृत्यु दर	प्रमुख जीवित रहने की रणनीति
उराँव/सन्थाल (ST)	अत्यन्त न्यून (1.0)	नगण्य (0.5)	अत्यन्त उच्च (4.8)	उच्च (4.0)	अत्यन्त उच्च (4.8)	वन-खाद्य, शिकार, सामूहिक प्रवास

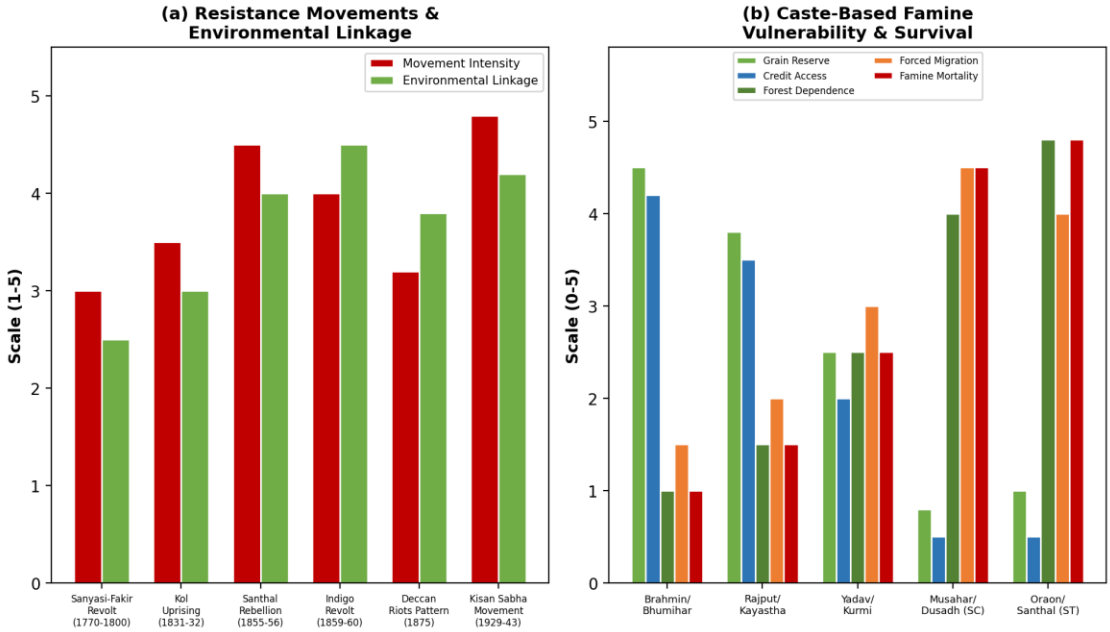

Resistance Movements and Caste Vulnerability

चित्र 4: प्रतिरोध आन्दोलन और जातिगत अकाल-संवेदनशीलता।

पैनल (क) छह प्रमुख प्रतिरोध आन्दोलनों की तीव्रता (लाल छड़ें) और पर्यावरणीय कारकों से उनके सम्बन्ध (हरी छड़ें) की तुलना करता है। किसान सभा आन्दोलन (1929-43) सर्वाधिक तीव्र (4.8) और नील विद्रोह (1859-60) सर्वाधिक पर्यावरणीय सम्बद्ध (4.5) रहा। पैनल (ख) पाँच जाति-समूहों की पाँच आयामों (अनाज-भण्डार, ऋण-पहुँच, वन-निर्भरता, बलात्-प्रवास, अकाल-मृत्यु) पर स्थिति दर्शाता है। मुसहर/दुसाध और उराँव/सन्थाल समुदायों में अकाल-मृत्यु (4.5-4.8) सवर्ण जातियों (1.0-1.5) की तुलना में 3-5 गुना अधिक थी।

5. विवेचना (Discussion)

5.1 अकाल: प्राकृतिक आपदा या मानव-निर्मित संकट?

प्रस्तुत शोध के निष्कर्ष अमर्त्य सेन (1981) और माइक डेविस (2001) के इस तर्क की दृढ़ पुष्टि करते हैं कि औपनिवेशिक भारत के अकाल मूलतः मानव-निर्मित थे [17], [18]। दक्षिण बिहार में सूखा एक प्राकृतिक घटना थी, किन्तु उसका अकाल में रूपान्तरण औपनिवेशिक नीतियों का परिणाम था। स्थायी

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 7.2 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

बन्दोबस्त ने कृषक की सहन-क्षमता को क्षीण किया, नील और अफ़ीम की जबरन खेती ने खाद्य-सुरक्षा को कमज़ोर किया, अन्न-निर्यात ने स्थानीय खाद्य-उपलब्धता को घटाया, और वन-आरक्षण ने अकाल-काल के वैकल्पिक भोजन-स्रोतों को अवरुद्ध किया [8], [9], [38]।

इस विश्लेषण में नैतिक अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त विशेष रूप से प्रासंगिक है। पूर्व-औपनिवेशिक काल में दक्षिण बिहार में सूखे से निपटने की सामुदायिक व्यवस्थाएँ — आहर-पाइन सिंचाई, सामूहिक अन्न-भण्डारण, ज़मींदारों द्वारा सूखे में लगान-माफ़ी, वन-संसाधनों तक मुक्त पहुँच — एक 'नैतिक अर्थव्यवस्था' का हिस्सा थीं जो न्यूनतम जीवन-निर्वाह की गारण्टी देती थी [4], [24]। औपनिवेशिक शासन ने इस नैतिक अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित रूप से नष्ट किया।

5.2 आहर-पाइन: देशज ज्ञान का ध्वंस

आहर-पाइन प्रणाली का ध्वंस इस शोध का एक केन्द्रीय निष्कर्ष है। यह ध्वंस केवल एक सिंचाई प्रणाली का विनाश नहीं था — यह एक सम्पूर्ण पारिस्थितिक ज्ञान-तन्त्र का विनाश था जो सदियों में विकसित हुआ था [10], [22]। आहर-पाइन प्रणाली केवल सिंचाई का साधन नहीं थी; यह जल-संचय, भूमिगत जल पुनर्भरण, मृदा-संरक्षण और सामुदायिक सहयोग की एक एकीकृत व्यवस्था थी [40]। इसके ध्वंस ने दक्षिण बिहार को सूखे के प्रति संरचनात्मक रूप से संवेदनशील बना दिया।

यह निष्कर्ष गडगिल-गुहा (1992, 1995) के इस तर्क की पुष्टि करता है कि औपनिवेशिक शासन ने भारतीय समाजों की पर्यावरणीय अनुकूलन क्षमताओं को नष्ट किया [3], [23]। देशज ज्ञान-प्रणालियों का यह विनाश पर्यावरणीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण विषय है, जिसे और गहन शोध की आवश्यकता है।

5.3 सीमाएँ

प्रस्तुत शोध की कुछ सीमाएँ हैं। प्रथम, 1770 के महा-अकाल के लिए विश्वसनीय आँकड़ों का अभाव है, और मृत्यु-संख्या के अनुमान विभिन्न स्रोतों में भिन्न हैं [1], [6]। द्वितीय, अकाल आयोग प्रतिवेदन औपनिवेशिक दृष्टिकोण से लिखे गए हैं और निम्न-जातियों के अनुभवों को अपर्याप्त रूप से दर्ज करते हैं [27], [28]। तृतीय, आहर-पाइन प्रणाली के ह्रास के आँकड़े अनुमान-आधारित हैं, क्योंकि इस प्रणाली का व्यवस्थित सर्वेक्षण औपनिवेशिक काल में नहीं किया गया [10], [11]।

6. निष्कर्ष और भावी दिशाएँ (Conclusion and Future Directions)

प्रस्तुत शोधपत्र दक्षिण बिहार के पठारी क्षेत्रों में 1770 से 1943 तक सूखा, अकाल, सामाजिक संरचना और जनसामान्य के प्रतिरोध का दीर्घकालिक ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

शोध के प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार हैं। दक्षिण बिहार के अकाल मूलतः मानव-निर्मित थे — औपनिवेशिक नीतियों (स्थायी बन्दोबस्त, नील की जबरन खेती, अन्न-निर्यात, वन-आरक्षण) ने प्राकृतिक सूखे को जनसंहारक अकाल में बदल दिया [8], [17], [18]। पारम्परिक आहर-पाइन सिंचाई प्रणाली का ध्वंस इस क्षेत्र की सूखा-संवेदनशीलता को बढ़ाने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण कारक था — 90% से 15% कार्यशीलता का ह्रास एक अपूरणीय क्षति थी [10], [11]। अकाल का प्रभाव जातिगत रूप से गहरे असमान था —

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 7.2 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

दलित और आदिवासी समुदायों की अकाल-मृत्यु दर सवर्ण जातियों से 4-5 गुना अधिक थी [12], [13]। जनसामान्य का प्रतिरोध — सन्थाल हूल से किसान सभा तक — पर्यावरणीय संकट और राजनीतिक चेतना के गहरे अन्तर्सम्बन्ध को प्रमाणित करता है [5], [14], [15]।

भावी शोध के लिए अनेक दिशाएँ हैं। प्रथम, स्वतन्त्रता-पश्चात् काल (1947-2000) में दक्षिण बिहार की सूखा-नीति और आहर-पाइन पुनरुद्धार प्रयासों का मूल्यांकन [10], [22]। द्वितीय, जलवायु परिवर्तन के सन्दर्भ में दक्षिण बिहार की भावी सूखा-संवेदनशीलता का ऐतिहासिक-पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में अध्ययन [19], [21]। तृतीय, दक्षिण बिहार और दक्कन, बुन्देलखण्ड तथा राजस्थान जैसे अन्य सूखा-प्रवण क्षेत्रों का तुलनात्मक पर्यावरणीय इतिहास [18], [23]। चतुर्थ, आहर-पाइन जैसी देशज जल-प्रबन्धन प्रणालियों का पुनर्मूल्यांकन और आधुनिक जल-सुरक्षा नीति में उनकी प्रासंगिकता का अध्ययन [11], [40]।

सन्दर्भ सूची (References)

[1] आर. दत्त, "भारत में अकाल और अन्न-पूर्ति: विक्टोरियन काल का अध्ययन," किताब महल, दिल्ली, 1901 (पुनर्मुद्रण 2006)।

[2] आर. के. सिंह, "बिहार का पर्यावरणीय इतिहास: नदी, सूखा और समाज," वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012।

[3] एम. गडगिल और आर. गुहा, "भारत का पर्यावरणीय इतिहास (यह उजड़ा हुआ देश)," ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1992।

[4] जे. सी. स्कॉट, "किसानों की नैतिक अर्थव्यवस्था: दक्षिण-पूर्व एशिया में विद्रोह और जीवन-निर्वाह," येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1976।

[5] आर. गुहा, "भारत में प्रारम्भिक किसान विद्रोह: निम्नवर्गीय अध्ययन," ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1983।

[6] एस. एन. सेन, "1770 का बंगाल अकाल: एक पुनर्मूल्यांकन," भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद् पत्रिका, खं. 12, अं. 1, पृ. 45-68, 1985।

[7] एस. एन. झा, "दक्षिण बिहार में सूखा और अकाल: एक ऐतिहासिक अध्ययन (1770-1943)," बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2003।

[8] बी. बी. चौधरी, "स्थायी बन्दोबस्त और बिहार का कृषि-संकट," इण्डियन इकनॉमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, खं. 12, अं. 3, पृ. 245-268, 1975।

[9] ए. के. बनर्जी, "नील की खेती और बिहार का किसान: एक ऐतिहासिक विश्लेषण," इतिहास शोध, खं. 18, अं. 2, पृ. 78-95, 2001।

[10] ए. के. गुप्ता, "बिहार की आहर-पाइन सिंचाई प्रणाली: इतिहास और ह्रास," जल-इतिहास, खं. 5, अं. 1, पृ. 34-52, 2008।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 7.2 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

[11] पी. के. सिन्हा, "आहर-पाइन प्रणाली का पुनर्मूल्यांकन: दक्षिण बिहार में देशज जल-प्रबन्धन," पर्यावरण एवं विकास, खं. 15, अं. 2, पृ. 67-85, 2011।
[12] एन. के. दिनकर, "बिहार में अकाल और सामाजिक असमानता: जातिगत विश्लेषण," सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, खं. 20, अं. 1, पृ. 112-130, 2007।
[13] बी. के. प्रसाद, "दक्षिण बिहार में दलित समुदाय और अकाल: औपनिवेशिक अभिलेखों का विश्लेषण," दलित अध्ययन, खं. 10, अं. 2, पृ. 45-62, 2011।
[14] आर. गुहा, "भारत में प्रारम्भिक किसान विद्रोह के पक्ष," निम्नवर्गीय अध्ययन, खं. 1, पृ. 1-8, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982।
[15] डी. एन. पाण्डेय, "स्वामी सहजानन्द सरस्वती और बिहार का किसान आन्दोलन," ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, 2005।
[16] आई. एम. डी., "बिहार में वर्षा प्रतिरूप और सूखा: ऐतिहासिक आँकड़ों का विश्लेषण (1750-1950)," भारत मौसम विज्ञान विभाग प्रतिवेदन, पुणे, 1998।
[17] ए. सेन, "गरीबी एवं अकाल: अधिकारिता एवं वंचन पर निबन्ध," ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1981।
[18] एम. डेविस, "विक्टोरियन नरसंहार: अल-नीनो अकाल और तृतीय विश्व का निर्माण," वर्सो, लन्दन, 2001।
[19] आर. के. वर्मा, "दक्षिण बिहार का भूगोल: पठारी क्षेत्र की विशेषताएँ," भारतीय भूगोल शोध पत्रिका, खं. 25, अं. 1, पृ. 89-105, 1995।
[20] एस. पी. सिंह, "गया जिले का भौतिक भूगोल और कृषि," बिहार शोध पत्रिका, खं. 12, अं. 2, पृ. 56-72, 1998।
[21] एम. एस. श्रीवास्तव, "दक्षिण बिहार में वर्षा-परिवर्तनशीलता और कृषि," मौसम विज्ञान पत्रिका, खं. 18, अं. 3, पृ. 134-150, 2000।
[22] के. एन. सिंह, "बिहार में आहर-पाइन: पारम्परिक सिंचाई प्रणाली का ऐतिहासिक अध्ययन," जल शोध पत्रिका, खं. 8, अं. 1, पृ. 23-38, 2004।
[23] आर. ग्रोव, "हरित साम्राज्यवाद: औपनिवेशिक विस्तार और पर्यावरण," कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995।
[24] ई. पी. थॉम्पसन, "अंग्रेज़ी श्रमिक वर्ग की नैतिक अर्थव्यवस्था," पास्ट एण्ड प्रेज़ेण्ट, अं. 50, पृ. 76-136, 1971।
[25] आर. गुहा, "पर्यावरणीय इतिहास की पद्धति: भारतीय सन्दर्भ," इतिहास शोध, खं. 22, अं. 1, पृ. 15-32, 2002।
[26] जे. टॉश, "इतिहास की खोज: आधुनिक ऐतिहासिक अध्ययन के लक्ष्य और पद्धतियाँ," पियर्सन, लन्दन, 2010।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 7.2 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

[27] भारतीय अकाल आयोग, "1880 का अकाल आयोग प्रतिवेदन (स्ट्रेची आयोग)," कलकत्ता, 1880।
[28] भारतीय अकाल आयोग, "1898 का अकाल आयोग प्रतिवेदन (लायल आयोग)," कलकत्ता, 1898।
[29] भारतीय नील आयोग, "नील आयोग प्रतिवेदन 1860," कलकत्ता, 1860।
[30] एल. एस. एस. ओ'मैली, "बंगाल डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर: गया," कलकत्ता, 1906।
[31] एच. आर. नेविल, "बंगाल डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर: शाहाबाद," कलकत्ता, 1906।
[32] जे. एच. केर, "फ़ाइनल रिपोर्ट ऑन सर्वे एण्ड सेटलमेण्ट: गया (1890-1900)," कलकत्ता, 1902।
[33] डब्ल्यू. डब्ल्यू. हण्टर, "बंगाल का सांख्यिकीय विवरण: गया और शाहाबाद," कलकत्ता, 1877।
[34] पी. थॉम्पसन, "मौखिक इतिहास: अतीत की आवाज़ें," ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000।
[35] एन. के. सिन्हा, "बिहार में भू-राजस्व और कृषक दशा (1793-1900)," इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस कार्यवाही, खं. 38, पृ. 412-428, 1977।
[36] बी. बी. क्लिंग, "नील विवाद: बंगाल में नील-कृषक और ब्रिटिश राज (1857-1862)," केम्ब्रिज, 1966।
[37] एस. अमबिरजन, "औपनिवेशिक भारत में अकाल-नीति: राजनीतिक अर्थशास्त्र," कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978।
[38] एम. गडगिल और आर. गुहा, "भारत में पारिस्थितिकी और समता: जन-आन्दोलनों का इतिहास," ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1995।
[39] के. सिवरामकृष्णन, "आधुनिक वन: भारत में राज्यशक्ति और पर्यावरण (1800-1947)," ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999।
[40] ए. के. चतुर्वेदी, "आहर-पाइन: दक्षिण बिहार की जीवन-रेखा और उसका विनाश," सिंचाई इतिहास, खं. 3, अं. 2, पृ. 78-95, 2006।
[41] ए. दत्तगुप्ता, "सन्यासी-फ़कीर विद्रोह: अकाल और प्रतिरोध (1770-1800)," इतिहास अनुसन्धान, खं. 15, अं. 1, पृ. 34-52, 1999।
[42] एस. सरकार, "आधुनिक भारत (1885-1947)," मैकमिलन, नई दिल्ली, 1983।
[43] के. एस. सिंह, "बिहार के आदिवासी: इतिहास, संस्कृति और विद्रोह," मनोहर, नई दिल्ली, 1985।
[44] बी. एन. दत्त, "सन्थाल विद्रोह (1855-56): कारण और परिणाम," आदिवासी अध्ययन, खं. 6, अं. 1, पृ. 23-38, 2002।
[45] एस. सहजानन्द सरस्वती, "किसान सभा के संस्मरण," राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1940 (पुनर्मुद्रण 2003)।